• कविताएं...

जीवन और शतरंज

जीवन और शतरंज में
आता नहीं है ठहराव कहीं भी
हारे हुए सिपाही के
न रहते हुए भी
चलते रहते हैं ये
अनवरत ही।
कौन किसे कब मात देगा
ये कहना मुश्किल है
मगर ये सच है कि
बैठे हैं घातिये हर ओर
घात लगाकर।
हर कदम पर
सतर्क रहते लड़ना होगा
यह नियम है
भावनाओं के आवेश में
मुश्किल हो जाता है
खेल और भी
एक हल्की सी चूक पर
समर्थ होते हुए भी
बजीर पिट जाता है

होता है आकंलन
सही और गलत का
खेल की समाप्ति पर
हार-जीत
यश-अपयश
और चलते है दौर
मंथन के भी।
चौकोर शतरंज की विसात पर
मरे हुए प्यादे
हाथी, घोड़े
पुनः खड़े हो जाते हैं
बाजी खत्म होने पर
नए खेल के लिए।
किन्तु
जीवन-शतरंज की विसात पर
नहीं लौटता है कोई भी
एक बार चले जाने के बाद
रह जाती है शेष
मात्र स्मृतियां ही
जीवन और शतरंज में
अंतर है मात्र
इतना सा ही।

-मनोज चौहान

• कहानी/-भीष्म साहनी...

आवाजें...

गतांक से आगे...

पार्टी पर इसका अजीब असर हुआ। एक प्रकार की स्निग्धता-सी आ गई, लगा जैसे वे सब एक ही नाव में बैठे हैं। और जिनती देर नाव को चलते रहना है, उतनी देर उन्हें इसी नाव पर बने रहना है।

ये सब वर्षों पहले की बातें हैं, लगता है कि एक युग बीत चुका है। बहुत-से लोग मर-खप चुके हैं बहुत-से नए लोग मुहल्ले में रहने आ गए हैं। पहले जो मुहल्ला खाली, खाली लगा करता था अब खचाखच भर गया है। तौर-तरीके बदल गए हैं, रहन-सहन बदल गया है। 'शरणार्थी' शब्द पीछे ही कहीं कब का गुम हो चुका है।

मुहल्ला वही है पर उसका नक्शा बहुत कुछ बदल गया है। प्रत्येक घर के आंगन की दीवारें ऊंची उठ गई हैं, अब एड़ियां उठाकर भी देखो तो पड़ोस का आंगन नहीं देख पाओगे। कहीं-कहीं पर तो दीवारों के ऊपर लोहे की नुकीली सलाखें या कांच के टुकड़े भी खोंस दिए गए हैं-सुरक्षा के लिए। बहुत-से लोगों ने घरों में कुत्ते रख लिए हैं जो घरों के फाटक के पीछे हर राह जाते पर भौंकते रहते हैं। सुबह होने पर अनेक घरों की मालकिनें या मालिक अपने कुत्तों को हवाखोरी और 'दिसा-पानी' के लिए मुहल्ले की सड़कों पर ले जाते हैं। कहते हैं इससे कुत्ते का बदन खुल जाता है। अनेक घरो के सामने मोटरें खड़ी रहती हैं। मुहल्ले की आबादी बहुत बढ़ गई है, सभी ने घरों में किराएदार रख छोड़े हैं, कई लोगों ने तो अपने घरों पर दो-दो मंजिल और बना ली हैं, बारह और तेरह ब्लाकवालों ने निचली मंजिल पर दूकानें बना दी है, छोटी-छोटी दूकानें, कहीं दर्जी बैठता है तो कहीं घड़ीसाज, तो कहीं पान-सिगरेटवाला। मार्कीट की ओर जानेवाली सड़क पर तो घरों के नीचे दूकानें ही दूकानें खुल गई हैं। एक-एक घर में चार-चार परिवार रहने लगे हैं। मुहल्ला सचमुच रच-बस गया है।

पुराने लोगों में वकील माणिकलाल अभी भी जिंदा हैं। पर बहुत बूढ़ा हो गया है। चलता अभी भी सड़क के बीचोबीच है, पर पीठ झुक गई है, छड़ी के सहारे रास्ता टटोल-टटोल कर चलता है। कभी-कभी रास्ता भटक जाता है और किसी अनजान आदमी के घर के सामने जा खड़ा होता है। वहां ठिठका खड़ा रहता है मानो उसे सुध ही न हो कि कहां पहुंच गया है। अक्सर घरवाले उसे पहचान लेते हैं और घर का नौकर या परिवार का कोई आदमी उसे उसके घर तक छोड़ आता है।

वर्षों पहले की उस पार्टी का अच्छा असर हुआ था कि डब्बू को नौकरी मिल गई थी और उसने करोल बाग में ठेला लगाना और गज-गज छींट बेच पाने के लिए हेंक लगाना छोड़ दिया था। यह नौकरी उसे डॉ. मोहकमचंद के असर-रसूख से मिली थी। डॉ. मोहकमचंद आदमी पहचानता था और उस पार्टी में ही वह समझ गया था कि डब्बू काम आनेवाला व्यक्ति है, जो इसके साथ भलाई करेगा उसके लिए जान की बाजी लगा देगा।

नई नौकरी में डब्बू किसी फैक्टरी के गोदाम के बाहर बैठने लगा था। गोदाम में से जितना माल उठवाना होता तो उसकी पर्ची फैक्टरी के दफ्तर में से बनकर आती थी। डब्बू का काम था पर्ची की पड़ताल करना, और उसी हिसाब से गोदाम में से माल उठवा देना। फैक्टरी में से पर्ची आती, जिस पर बाकायदा ठप्पा लगा होता। यह उस पर अपनी 'चिड़ी' मारता, रजिस्टर में चढ़ाता और माल उठवा देता। सीधा-सा काम था, सुबह नौ बजे जाओ, शाम पांच बजे घर आ जाओ, अल्लाह-अल्लाह, खैर-सल्लाह, न अपनी जेब से पैसा लगता था न कोई जौखिम न कोई चिंता। डब्बू संतुष्ट रहने लगा था। सुबह सवेरे हर रोज सबसे पहले डॉ. मोहकचंद की दूकान के सामने जा खड़ा होता और हाथ जोड़कर कहता, ''आपका दिया खाते हैं, हमें भी कोई खिदमत का मौका दो।'' यह उसका रोज का दस्तूर बन गया था। डॉ. मोहकमचंद जवाब में मुस्करा देता और अपने पेशावरी अंदाज में हाथ झटककर उसे चले जाने को कहता।

''बताऊंगा, बताऊंगा, जब वक्त आएगा, अब जा, अपना काम देख। रोज-रोज मेरा मगज चाटने नहीं आया कर।''

इस पर मक्खनलाल हंसकर सिर झटक देता। ''बेहतर, जनाब'' कहता और अपने जुड़े हुए हाथ माथे को लगाकर वहाँ से चल देता, पर दूसरे दिन वहां फिर पहुंच जाता।

तभी नगरपालिका के चुनाव आ गए और बस्ती के बहुत-से लोगों के आग्रह पर डॉ. मोहकमचंद ने भी खड़ा होने का फैसला कर लिया। डब्बू के शरीर में तो जैसे बिजली दौड़ गई। उसे खिदमत करने का मौका मिल गया था। डॉ. मोहकमचंद के निर्वाचन अभियान में कूद गया और जी-तोड़ मेहनत करने लगा। गोदाम से लौटते ही, तहमद बांध लेता, और सड़क पर निकल आता और सिगरेट के कश छोड़ता निर्वाचन क्षेत्र की तीनों बस्तियों के घर-घर जाने लगा। कोई पूछता तो बड़े जोश-खरोश से अपने पाकिस्तानी अंदाज में कहता-

''इंशा अल्लाह, हमारा बटेरा जीतेगा!''

मानो नगरपालिका चुनाव बटेरों की लड़ाई रहा हो जिसमें उसने अपना बटेरा छोड़ रखा हो।

डॉ. मोहकम सचमुच चुनाव जीत गया था। उस दिन मक्खनलाल भागता हुआ बाजार गया था और एक 'ढोलची' को पकड़ लाया था। डॉ. मोहकमचंद की दुकान के सामने ढोल बजा, उसके गले में हार डाले गए, और डब्बू के इसरार पर जुलूस निकाला गया जो चुनाव-क्षेत्र की तीनों बस्तियों में घूमा, उस दिन बस्ती में दिन भर ढोल बजता रहा, डब्बू अपने पैसे से लड्डू बनवा लाया और मुहल्ले में लोगों में बाँटता रहा, उनका मुंह मीठा करवाता रहा।

यह भी बहुत पुरानी घटना जान पड़ती है अतीत के घटाटोप में खोई हुई। उसके कुछ ही साल बाद नगरपालिका का दूसरा चुनाव जीत जाने के बाद; डॉ. मोहकमचंद भी दुनिया से कूच कर गया था। बस में बैठा चांदनी चौक की ओर जा रहा था, जब बैठे-बैठे ही एक ओर लुढ़क गया था। तब मक्खनलाल ने डॉ. मोहकमचंद की अर्थी का वह आयोजन किया था कि किसी राजा की शोभा-यात्रा क्या रही होगी।

जिस फैक्टरी में मक्खनलाल काम करता था, वहां उसकी अच्छी साख बन गई थी। अब उसका आत्मविश्वास भी बढ़ गया था, वह देसी पोशाक की जगह पैंट पहनने लगा था, हाथ भी कम जोड़ता था, और उसके हाव-भाव से भी लगता था कि जिंदगी के घोड़े पर सवार वह मजबूती से उसकी पीठ पर बैठा है और लगाम को खींचकर रखे हुए है, और घोड़ा उसी ओर जाएगा जिस ओर वह लगाम को मोड़ेगा।

फैक्टरी के गोदाम में वह बड़ी मुस्तैदी से अपना काम कर रहा था। फैक्टरी के दफ्तर में से पर्ची बनकर आती, वह उसी हिसाब से गोदाम में से माल उठवा देता, पर्ची पर अपनी 'चिड़ी' मारता, और रजिस्टर में दर्ज कर देता।

पर अंदर ही अंदर गोलमाल चल रहा था। डब्बू की आंखें उकाब की आंखों की तरह लोगों के रहस्यों को पकड़ती थीं। डब्बू को हवा हो गई कि कहीं से झूठी पर्ची बनकर आ रही है और गोदाम में से माल उठ रहा है। उसने एक ऐसी पर्ची पकड़ ली और पर्ची लाने वाले को दबोच लिया। माल उठवानेवाले ने रिश्वत देने की कोशिश की। इसने उसे घूंसा जड़ दिया। बात मालिकों तक पहुंची। अब फैक्टरी का खैरख्वाह होने के नाते, झूठी पर्ची को पकड़ा तो इसने, पर उलटा मुअत्तल भी यही हो गया। यह भौचक्का-सा रह गया। **-जारी**

उसने एक ओर खिड़की के पास बैठी तीन लड़कियों को संबोधन करते हुए कहा, पर तीनों शर्मा गईं और नजर नीचे कर ली। वकील माणिकलाल को डब्बू का लड़कियों से गाने के लिए कहना भी बुरा लगा।

वह कुछ कहने ही जा रहा था कि कहीं से आवाज आई– ''तुम ही कुछ सुनाओ, मक्खनलाल!'' मक्खनलाल हंस दिया– ''मेरी तो आवाज ही फटे ढोल जैसी है। मैं क्या गाऊंगा...

• शायरी...

निशान क़ाफ़ला-दर-क़ाफ़ला रहेगा मिरा
जहां है गर्द-ए-सफ़र सिलसिला रहेगा मिरा
मुझे न तू ने मिरी ज़िंदगी गुज़ारने दी
ज़माने तुझ से हमेशा गिला रहेगा मिरा

◆ ◆ ◆

सियह दिलों में सितारों की फ़स्ल उगाने को
हुनर चराग़ की लौ से मिला रहेगा मिरा
उजड़ते वक्त से बर्बाद होती दुनिया से
तिरे सबब से तअल्लुक़ दिला रहेगा मिरा

◆ ◆ ◆

न गुफ्तूगू से ये लर्ज़िश गुमां की जाएगी
अगर असास का पत्थर हिला रहेगा मिरा
ये सोच कर कभी अक्स उस किरन का उतर था
इस आईना में सदा दिल खिला रहेगा मिरा

◆ ◆ ◆

'रियाज़' चुप से बढ़े और दुख ज़रूरत के
मुझे था ज़ोम ये घाव सिला रहेगा मिरा

-रियाज़ मजीद

• घर की दहलीज़...

घर की दहलीज़ से बाज़ार में मत आ जाना
तुम किसी चश्म-ए-ख़रीदार में मत आ जाना
ख़ाक उड़ाना इन्हीं गलियों में भला लगता है
चलते फिरते किसी दरबार में मत आ जाना
यूं ही खुश-बू की तरह फैलते रहना हर सू
तुम किसी दाम-ए-तलब-गार में मत आ जाना
दूर साहिल पे खड़े रह के तमाशा करना
किसी उम्मीद के मँजधार में मत आ जाना
अच्छे लगते हो के ख़ुद-सर नहीं खुद्दार हो तुम
हां सिमट के बुत-ए-पिंदार में मत आ जाना।

-ऐतबार साज़िद